अध्याय पाँच

आधुनिक दलित कहानियों का शिल्प एवं भाषा वैशिष्ट्य

आधुनिक दलित कहानियों की विकास यात्रा में विभिन्न कहानी आंदोलनों का समर्थन करने वाले लेखकों ने भाषा शैली और शिल्प को नया परिष्कार और गरिमा प्रदान की है। विभिन्न वर्गों, परिवेशों और आन्दोलनों से प्रभावित लेखकों ने भाषा-पक्ष के नए पहलुओं को उजागर किया है। भाषा को मनुष्य के बीच विचारों और भावनाओं के आदान-प्रदान का माध्यम कहा जाता है। लेकिन दलित और गैर-दलित एक ही समाज का हिस्सा होने के बावजूद दोनों के बीच भाषा की दृष्टि से विविधता है। अलगाव दिखाई देता है। दलित साहित्य की भाषा वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था के खिलाफ गुस्सा, आक्रोश और आग उगलती है। यह भाषा अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष का खुला ऐलान करती है। साहित्य में संवेदना के स्तर में परिवर्तन का प्रभाव साहित्य की भाषा पर पड़ता है। दलित साहित्य ने संवेदना के स्तर पर सामाजिक वर्चस्व और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई, इसलिए उसकी भाषा पर भी संवेदना का प्रभाव पड़ना अपरिहार्य है। प्रस्तुत अध्याय में दलित स्त्री केन्द्रित कहानियों के शिल्प एवं भाषायी वैशिष्ट्य का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

5.1 शिल्प

एक ओर जहां किसी भी लेखक की सफलता उसके द्वारा चुनी गई कहानी की विशेषताओं पर निर्भर करती है, वहीं दूसरी ओर उसके शिल्प-संयोजन का सभी विधाओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान होता है। यह साहित्य जगत की कई विधाओं का मिश्रण है। इसके कुछ तत्व हैं। कहानी जीवन का ही एक रूप है। कहानी के कथ्य का निर्माण सामाजिक घटनाओं से संबंधित है। कहानी के पात्र उन घटनाओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं। अपने विचार प्रस्तुत करें। अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए उपयुक्त भाषा का अभ्यास किया

जाता है। कहानी को प्रभावशाली बनाने के लिए शैली का प्रयोग करें। कहानी की घटनाएँ कहीं न कहीं घटित हो रही हैं। इस स्थान, समय को देशकाल और वातावरण कहा जाता है। कहानी का शीर्षक ही कहानी के सार को उजागर करता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी उपरोक्त तत्वों पर निर्मित है। कहानी में तत्वों का उपयोग करना रचनाकार पर निर्भर करता है। किसी लेखक की सफलता या विफलता उसकी शिल्प कौशल से उत्पन्न होती है। शिल्प के दो पहलू हैं, आंतरिक और बाह्य। ये दोनों पहलू महत्वपूर्ण हैं। आदर्श सक्सेना इस संदर्भ में लिखते है "शिल्प उसी वक्त सार्थक बनता है, जब साहित्यकार के अंदर के भाव वह शिल्प के बाहय तत्त्वों, भाषाशैली, शब्द, वाक्य, अलंकार आदि के आधार पर सरलता से प्रकट होते हैं। साथ ही शिल्प का बाहय् पक्ष भी महत्वपुर्ण होता है क्योंकि बाहय् पक्ष के के आधार पर ही उसके अंदर के भाव को उद्धृत करता रहता है"।[1] मूर्ति की बाह्य संरचना उसे कलात्मक रूप में प्रस्तुत करती है। इससे सृजन सफल होता है। दलित कहानियों को समझने के लिए कलात्मक अध्ययन आवश्यक है। इसलिए सबसे पहले शिल्प की प्रकृति, शिल्प का महत्व आदि जानना आवश्यक है। तभी कहानियों का कलात्मक अध्ययन उचित होगा। इसलिए शिल्प की प्रकृति और शिल्प के महत्व को प्रस्तुत किया गया है।

5.1.2 शिल्प का अर्थ

द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी और तारिणीश झा ने शिल्प की अर्थ इस प्रकार की है - शील् + प शिल्प के अर्थ संदर्भ में लिखा गया है "कला आदि कर्म वात्स्यायन के मत से नृत्य, गीत आदि 64 बाह्य क्रियाएँ और आलिंगन चुंबन आदि 64 आभ्यांतर क्रियाएं शिल्प कहलाती हैं । करीगरी और हुना"।[2]

डॉ० रामचन्द्र वर्मा ने शिल्प का अर्थ करते हुए लिखा है "हाथ से चीजें बनाने की कला, कारीगरी, हस्तकारी"।[3]

डॉ० वर्मा ने "मानक हिंदी कोश में हस्तकला शब्दार्थ का भी उल्लेख किया है"।[4]

5.1.3 शिल्प की परिभाषा

शिल्प भावनाओं को व्यक्त करने का आधार है, इसके लिए वह बाह्य एवं आन्तरिक रूपों की सहायता लेता है। इनमें बाह्य रूप की प्रधानता होती है। विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी सोच के अनुरूप शिल्प को परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाएँ उल्लेखनीय हैं।

अज्ञेय के अनुसार - "भाव को सर्वग्राह्य बनाने के संदर्भ में जिन उपादानों को अपनाया जाता है उसे शिल्प कहते हैं। अपने अद्वितीय पात्र भी अद्वितीयता (और अद्वितीयता के बावजूद भी) आप सर्व संवेद्य और सर्वग्राह्य बना सके, तो अपने विशिष्ट शब्द प्रयोग का सर्व संवेद्य और सर्व ग्राह्य बना सके, तो आप ने अपना काम किया और ठीक किया"।[5]

डॉ. प्रेम भटनागर ने काव्य भाव को रूपायित करने वाले आधार को शिल्प की संज्ञा दी है- "शिल्प विधि का असली पर्यायवाची रूपाकार है, जो किसी भी साहित्यिक कृति को एक विशिष्ट आकार देता है, शक्ल देता है और फिर यह रूपाकार साहित्य की रूढ़ि या परंपरा भी नहीं है, जो साहित्यकार के मनोभावों, आवेगों तथा संवेदनाओं को एक स्थिर रूप से रूपायित करके रख दे"।[6]

डॉ. कैलाश वाजपेयी के अनुसार रचना में भावों को मूर्त रूप देने के आधार को शिल्प की संज्ञा दी है - "शिल्प विधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा जोखा है जिसके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी हुआ अवतरित हुए हैं। शिल्प विधि रचना कैसी है? यह उत्तर न देकर रचना ऐसी है पर अधिक जोर देती है"।[7]

डॉ. मोहन अवस्थी ने काव्य विधान से काव्य शिल्प को भिन्न बताते और काव्य विधान को साकार करने के आधार को शिल्प कहा - "काव्य विधान काव्य का विज्ञान है। कंविता करने की विधि से लेकर कविता संबंधी गुण दोषों का विधिवत ज्ञान उसके भीतर आ जाता है ।

और उस ज्ञान का आत्म प्रकाश शिल्प है। काव्य विधान तथा काव्य शिल्प में लिए गए और साकार का अंतर है। काव्य विधान को हम यदि बीज मंत्र हैं तो काव्य शिल्प उस मंत्र का दृश्यमान प्रभाव है । विधान को मूर्त करने का यही प्रयास शिल्प है"।[8]

5.1.4 शिल्प का स्वरूप

शिल्प के माध्यम से रचनाकार अपने विषय को मूर्त रूप दे सकता है और उसके अर्थ का बोध करा सकता है। इसे कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करता हिंदी में इस शिल्प के लिए कई शब्दों का प्रयोग होता है। किसी भी वस्तु को बनाने में प्रयुक्त विधियों एवं प्रक्रियाओं के संग्रह को शिल्प विधि कहते हैं। जैसे - शिल्प शिल्प कानून, शिल्प विधि आदि। अंग्रेजी भाषा में भी इस 'क्राफ्ट' शब्द के लिए कई शब्द हैं। जैसे- शिल्प, तकनीक, कला इन सभी शब्दों में अंग्रेजी शब्द तकनीक का प्रयोग किया गया है। क्योंकि 'तकनीक या शिल्प' शब्द का शाब्दिक अर्थ किसी चीज़ को बनाने या बनाने का तरीका या पद्धति है। कोई भी रचनाकार अपने विचारों को सही ढंग से अभिव्यक्त करने तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए शिल्प पद्धति का प्रयोग करता है।

इस बारे में डॉ. पांडुरंग पाटील कहते हैं "परंपरागत रुपाकारों से मुक्त होने की ललक, नवोन्मेषशालिनी शक्ति, निजी स्वभाव, संस्कार, रुचि एवं अध्ययन आदि कारणों से ही रचनाकार परिवर्तित विषयों को सुचारु रुप से निर्वाह करने में प्रयत्नशील रहता है। युग में परिस्थितियों के साथ तादात्म्य रखते हुए शिल्प संबंधी नए-नए प्रयोग होते रहते हैं । युग परिवर्तन के साथ साथ जीवनमुल्यों में भी बदलाव आए, जीवनविषयक धारणाएँ भी बदल गई । इस परिवर्तित जीवन सत्य की उचित अभिव्यक्ति के लिए भी रचनाकार को - नई शिल्प विधियों का अत्मय लेना पड़ा"।[9] इस प्रकार, रचनाकार अपनी भावनाओं को अपनी शिल्पकला के माध्यम से उचित रूप से अभिव्यक्त करता है।

5.1.5 शिल्प का महत्व

किसी भी विधा या रचना को रचते समय शिल्प का योगदान लेना सबसे आवश्यक है। रचना के अनुसार शिल्प का प्रयोग किया जाता है। इससे रचनाकार का अभीष्ट लक्ष्य पूरा होता है। इसके साथ ही पाठक यह भी समझ पाते हैं कि महाकाव्य, लघुकाव्य, आख्यान, नाटक, कहानी, उपन्यास, जीवनी, एकांकी आदि में क्या संबंध है या क्या अंतर है। शिल्प की विभिन्न विधाओं में अलग-अलग रूप देखने को मिलते हैं। साहित्य। साहित्य में शिल्प का विकास विभिन्न अंगों से हुआ है। प्रबुद्ध एवं प्रतिभावान रचनाकारों के कठिन परिश्रम से विकास की यह परंपरा प्राचीन काल से आज तक जारी है और इसमें नये-नये आयाम हमारे सामने आये हैं। अथक परिश्रम और विभिन्न प्रयोगों के आधार पर पाठकों के समक्ष हस्तशिल्प से संबंधित नये विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

5.2 शिल्पगत वैशिष्ट्य

किसी भी कलात्मक या साहित्यिक कृति के निर्माण की प्रक्रिया को शिल्प विधि माना जाता है। लेखक द्वारा अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जिस विधि का प्रयोग करता है उसे शिल्प विधि कहते हैं। रचनाकार के मन में पहले से ही कोई निश्चित रूपरेखा या तथ्यात्मक आधार नहीं होता। उसके मन-मस्तिष्क में भावनाओं एवं संवेदनाओं की सघन प्रेरणा ही होती है। शिल्प विधा के माध्यम से वह अपने अनुभव को अभिव्यक्ति के द्वार तक ले जाता है, जहां उसकी रचना विभिन्न रूप धारण कर पाठकों तक संप्रेषित होती है। शिल्प का सम्बन्ध अभिव्यक्ति एवं अभिव्यंजना से है। किसी लेखक के शिल्प में हम उसके द्वारा प्रयुक्त विभिन्न विधियों, प्रक्रियाओं, गतिविधियों, रचना कौशल और उसकी अभिव्यक्ति का अध्ययन करते हैं। यदि सृजन की प्रक्रिया को विकासात्मक क्रम में रखा जाए तो रचनाकार सबसे पहले अपने परिवेश, स्थितियों और परिस्थितियों से संवेदनाओं को ग्रहण करता है। सभी संवेदनाएँ अनुभव नहीं बन जातीं। उनसे अनुकूल संवेदनाएँ संज्ञान में विकसित होती हैं। रचनाकार अपनी भावनात्मक स्थिति का विकास आत्मबोध एवं तथ्यात्मक

स्थिति से करता है। फिर वह कल्पना की सहायता से चित्र बनाता है और उन्हें उसी क्रम और सत्य में व्यक्त करता है। इसके लिए कलाकार किसी न किसी माध्यम का सहारा लेता है क्योंकि भौतिक वस्तुओं के माध्यम से व्यक्त हुए बिना अमूर्त अनुभवों के अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं है। अर्थात् रचनाकार की भावनात्मक संवेदना लिखित रूप में व्यक्त होकर मूर्त रूप लेती है। यह सम्पूर्ण मूर्त एवं सफल अभिव्यक्ति शिल्प के माध्यम से सम्पन्न होती है।

शिल्प का रचनात्मक मूल्य भी होता है। विद्वानों ने 'शिल्प' शब्द को सृजनात्मक कौशल के रूप में स्वीकार किया है। किसी भी कला में उसके शिल्प का उसके विषय से बहुत गहरा संबंध होता है। यदि हम संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी या अन्य साहित्य को देखें तो शिल्प शब्द कहीं न कहीं सृजन और सृजन कौशल से संबंधित प्रतीत होता है, अर्थात कुशल सृजन। शिल्प के माध्यम से लेखक अपने कथा साहित्य को रोचक एवं लोकप्रिय बनाता है। प्रत्येक साहित्यिक विधा का शिल्प स्वतंत्र है। रचनाकार अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए शिल्प का सहारा लेता है। इस प्रकार शिल्प और साहित्य सृजन एक-दूसरे से संबंधित होने के कारण दोनों को अलग-अलग रूप में नहीं देखा जा सकता। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शिल्प किसी भी साहित्यिक रचना का शरीर है। शिल्प का संबंध अनुभूति या अनुभूति की अभिव्यक्ति से है। शिल्प के माध्यम से रचनाकार अपना दृष्टिकोण, उद्देश्य आदि व्यक्त करता है। कहानी के प्रमुख शिल्पगत तत्व है -

1. विषयवस्तु
2. कथानक
3. चरित्र चित्रण
4. देशकाल तथा वातावरण
5. भाषा शैली

5.2.1 विषयवस्तु

दलित कहानी की वैचारिक रचना ज्योतिबा फुले और बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के मुक्ति आंदोलनों और विचारों से हुई है। दलित कहानी में सामाजिक जीवन मुख्यधारा में हाशिये पर जीवन जी रहे दलित समुदाय के अधिकारों को लेकर कई सवाल उठते रहे हैं. खासकर, जब 1956 में अंबेडकर ने अपने समर्थकों के साथ हिंदू धर्म छोड़ने की घोषणा करते हुए कहा था कि- "गले सड़े धर्म को त्यागकर, 6 जो असमानता और उत्पीड़न को मान्यता देता है। मैं आज एक नया जन्म ले रहा हूँ और नरक से मुक्ति प्राप्त कर रहा हूँ ।... मैं हिन्दू धर्म को त्यागता हूँ"।[10]

अतः इसका सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन की मुख्यधारा पर गहरा प्रभाव पड़ा। महाराष्ट्र सहित पूरे भारत में दलित आंदोलन को एक नई दिशा मिली। लेखन और विचारधारा की दुनिया में बदलाव आया। 1961 में अस्मितादर्श और 1972 में नामदेव धसाल और जे. के प्रकाशन से इसे और बल मिला। वी. पवार द्वारा बम्बई में गठित 'दलित पैंथर' से, जिसने अपने घोषणापत्र में कहा था कि - "राजसत्ता, धर्म, सम्पति और सामाजिक हैसियत के आधार पर होने वाली सभी ज्यादतियों के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रतिबद्ध अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ, भूमिहीन मजदूर, छोटे किसान और घुमंतू जनजातियाँ दलित विमर्श दलित मानी जाएगी"।[11]

मराठी में लेखन के क्षेत्र में नामदेव ढसाल, दया पवार, अर्जुन दंगले, बेबी कांबले, शरणकुमार लिंबाले, लक्ष्मण गायकवाड़, सूर्यनारायण रणसुभे आदि का पदार्पण इन्हीं सब परिस्थितियों का परिणाम था। हालाँकि हिंदी के दलित साहित्य पर मराठी के दलित सन्दर्भो का गहरा प्रभाव है, चाहे वह कहानियाँ हों, कविताएँ हों या आत्मकथाएँ। स्वामी अछूतानंद के प्रयासों से हिंदी क्षेत्र में दलित चेतना का उदय हुआ और दलित आंदोलन को नई ताकत मिली।

यह दलित कहानी में मौजूद दलित समाज के जीवंत अनुभव का वही यथार्थ है, जिसे दलित कहानीकारों ने वर्ण और जाति केंद्रित सामाजिक व्यवस्था के शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध रचा है। इसीलिए बीसवीं सदी में दलित आंदोलनों और विचारधारा के प्रभाव में जो दलित कहानियाँ लिखी गईं; इनका विश्लेषण करने पर यह प्रतीत हो जाता है कि दलित कहानियाँ केवल कहानियाँ नहीं, बल्कि दलित समाज के उत्पीड़न, संघर्ष और प्रतिरोध की वास्तविक तस्वीर हैं। इनका आकलन करते समय यह भी पता चलता है कि मुख्यधारा के लेखन के समानांतर दलित लेखकों ने पारंपरिक वर्ण और जाति केंद्रित सामाजिक व्यवस्था में अपनी जाति संस्कृति, सामाजिक संघर्ष और अपने अस्तित्व को खोजने की कोशिश की है और वर्ण और जाति को इससे स्वतंत्र करने का प्रयास किया है। उनके समाज का शोषण और उत्पीड़न। सबसे बड़ा कारण माना जा रहा है।

दलित कहानी का मुख्य लक्ष्य जाति एवं जाति-केन्द्रित असमानता तथा उसके शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना विकसित करना है। हालाँकि वर्ण-जाति व्यवस्था के संबंध में इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों का एक बड़ा वर्ग मानता है कि यह व्यवस्था समाज को नियंत्रित और संचालित करने तथा श्रमिकों के विभाजन के लिए थी।

जाति-पाति के इस प्रश्न को कहानीकारों ने दलित कहानी का हिस्सा बनाया। दलित कहानी के संदर्भ में यह वर्ण और जाति क्या है, इस निर्देश में सूरज बड़त्या जी की कहानी 'गुफ़ाएँ' में अपूर्वा के पिता और मामा अम्बेडकरवादी विचारधारा के प्रवर्तक हैं। अपूर्व भी बचपन से अपने पिता की बातें सुनकर बड़े हुए हैं। लेकिन जब लेखिका ने अपने प्यार के बारे में बताया तो उसके पिता ने उसे मना किया। उसकी मामाजी ने कहा - “अपूर्वा...देखो, लड़का है तो अपना ही...लेकिन हमारा समाज इसके लिए अभी तैयार नहीं होगा। हम मान भी लें। ...लेकिन आगे मानुषी...क्या होगा उसका? तुम्हारी तो शादी, चलो हो जायेगी। समाज की नाराजगी को हम झेल लेंगे...मामला सिर्फ़ यहीं तक का तो नहीं?”।[12]

खुद दलित होने के बावजूद लड़की के पिता जाति और उपजाति में अंतर बताते हुए कहते हैं - “अपूर्वा, तुम्हारे मामाजी ठीक कहते है...अभी हमारा समाज तैयार नहीं है। भले ही हम कितने प्रगतिशील हो जायें...लेकिन रहना तो हमें अपनी जात में ही है। हमें जाति तोड़नी होगी, लेकिन अभी थोड़ा वक्त़ लगेगा। बाक़ि तुम्हारी मर्ज़ी रोक नहीं रहा, लेकिन...”।[13] यह कहानी प्रगतिशीलता के पाखंडियों को उजागर करती है। आज भी हमारा समाज जाति-पाति से मुक्त नहीं हो पाया है।

दलित कहानियाँ भारतीय समाज की शोषणकारी परम्पराओं पर प्रहार करती हैं। इन शोषणकारी परंपराओं और दलित समाज से इनके संबंधों को समझना जरूरी है. इसीलिए दलित कहानीकारों ने इन कहानियों में परंपराओं से संबंधित निर्माणों का सीधा सामना किया है और उन्हें दलित स्वाभिमान के विरुद्ध माना है। टेकचंद जी के ‘ए.टी.एम’ कहानी में दलित स्त्री की स्वाभिमान का चित्रण किया है। कहानी में नायिका सुमित्रा के ससुराल वाले ए.टी.एम अपनाने के लिए कई परेशानियां खड़ी करते हैं। बहु द्वारा ससुराल में अपना सबकुछ लुटाना एक रिवाज और परंपरा है। वह इस सामाजिक विचारधारा को मानने वाले अपने ससुराल वालों को सही जवाब देकर चुप करा देती है। अंत में सबसे वह कहती है - “अपना और अपने घर का ख़र्चा मैं चला लूँगी...बिजली, पानी, गैस सब कर लूँगी... पर अपना ए.टी.एम किसी को नहीं दूँगी”।[14]

इस कहानी के माध्यम से लेखक ने सामाजिक जीवन में मौजूद उन परंपराओं के प्रति अपना विरोध व्यक्त किया है, जो दलितों के स्वाभिमान को ठेस पहुंचाती हैं। खास बात यह है कि दलित स्त्रीयों के भीतर प्रतिरोध की यह चेतना ज्ञान की प्रक्रिया से जुड़ने के बाद आती है। अर्थात् दलित स्त्री की अशिक्षा उन्हें सामाजिक रूढ़ियों और अनादरपूर्ण परंपराओं का पालन करने के लिए मजबूर करती है। दलित कहानीकारों ने इनका गहरा विरोध किया है।

दलित कहानियों की विषय वस्तु में जाति व्यवस्था और सांप्रदायिकता का अंतर्संबंध, शैक्षणिक संस्थानों में दलितों के साथ भेदभाव, ब्राह्मणवादियों और यथास्थितिवादियों की अस्वीकृति, संस्कृति और इतिहास की परीक्षा, ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच अंतर, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, महिलाओं के अधिकार, जातिवाद, ईश्वर- नियति और पुनर्जन्म आदि काल्पनिक बातों का अस्वीकृति आदी शामिल हैं। दलित कहानियाँ घृणा और हिंसा के कृत्यों को नजरअंदाज करती हैं और करुणा एवं बंधुत्व के भाव पर जोर देती हैं।

5.2.2 कथानक

कहानी में कथानक का स्थान सर्वोपरी है। कथा के अंतर्गत "कार्यव्यापार की योजना" को कथानक कहा जाता है। "कथानक" और "कथा" दोनों शब्द संस्कृत शब्द 'कठ' से बने हैं। संस्कृत साहित्य में 'कथा' शब्द का प्रयोग एक निश्चित काव्य रूप के अर्थ में किया गया है, परंतु कथा शब्द का सामान्य अर्थ है - 'वह जो कहा जाए'। यहां वक्ता के साथ-साथ श्रोता की उपस्थिति भी सम्मिलित है क्योंकि 'कहना' शब्द तभी सार्थक है जब उसे सुनने वाला कोई हो। श्रोता के अभाव में केवल 'बोलने' या 'बुदबुदाने' की ही कल्पना की जा सकती है, 'कहने' की नहीं। साथ ही, जो भी कहा जाए उसे कहानी की सीमाओं में समाहित नहीं किया जा सकता। अतः कहानी का अर्थ है किसी 'कथित घटना' को बताना या वर्णन करना जिसका एक निश्चित क्रम और परिणाम होता है।

कथा या कहानी भी सामान्यतः एक व्यावसायिक योजना है, परन्तु एक भी कहानी को कथानक नहीं कहा जा सकता; क्योंकि, कहानी की विशिष्टता उसके कालानुक्रमिक विवरण पर भारी पड़ जाती है। 'नायक को नायिका से प्यार हो गया और आख़िरकार उसने उससे शादी कर ली' - कहानी इस प्रकार है। 'नायक ने नायिका को देखा और उससे प्यार कर बैठा। अपनी वीरता और समर्पण से लक्ष्य को पाने की राह पर आने वाली अनेक बाधाओं को पार करते हुए अंततः उन्होंने नायिका से विवाह कर लिया' - कथानक। अर्थात् कहानी

किसी भी कथात्मक साहित्यिक कृति की रूपरेखा मात्र है, जबकि कहानी का स्वरूप कथानक में प्रस्तुत विषयवस्तु के अनुरूप स्पष्ट, सुसंगत एवं बोधगम्य बनकर उभरता है। कहानी की सफलता कथावस्तु पर निर्भर करती है। मनुष्य के जीवन में सदैव अनेक घटनाएँ होती रहती हैं। कहानियों में इन घटनाओं को काट कर एक सूत्र में पिरोया गया है। कहानीकार जीवन में बिखरी हुई कुछ घटनाओं को चुनता है, उन्हें एक अनन्य गंतव्य के लिए सिलसिलेवार रूप देता है और इतने कलात्मक ढंग से पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। जिससे पाठकों को जीवन का समग्र दृष्टिकोण प्राप्त होता है। प्रस्तुति की शैली एक अच्छी कथानक की विशेषता है। अलग-अलग कहानीकार किसी विषय को अपनी-अपनी मौलिकता के अनुरूप प्रस्तुत करते हैं। दलित स्त्री-केन्द्रित कहानियों में घटनाओं का द्वन्द्व और परिस्थितियों का तनाव भी है। दलित कहानीकार स्वयं कहानी का सृजन नहीं करते, बल्कि उस परिवेश विशेष की परिस्थितियों, लोक सांस्कृतिक घटनाओं और रीति-रिवाजों के आधार पर कहानी का सृजन होता है। इसी कारण दलित महिला-केन्द्रित कहानियाँ सदैव समय और स्थान से जुड़ी होती हैं। दलित लेखकों ने वर्तमान और अतीत दोनों से जोड़कर कहानियाँ रची हैं। अत: उनकी कथानक संरचना में अतीत और वर्तमान एक सिक्के के दो पहलू की तरह दिखाई देते हैं। कभी-कभी कहानी वर्तमान में शुरू होती है और कभी-कभी अतीत से शुरू होकर वर्तमान में ख़त्म हो जाती है। इसी कारण दलित स्त्री पर केन्द्रित कहानियों में कथानक की सुसंगतता एवं एकता है। लेखकों ने कहानी के आरंभ, मध्य और अंत को रोचक बनाया है। दलित समुदाय के भीतर, वे उनकी परंपराओं को आलोचनात्मक दृष्टि से देखते हैं और जहां आवश्यक हो, उनकी कमियों को उजागर करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की **'ग्रहण'** और **'बिरम की बहू'** कहानियों में उन्होंने दलितों में व्याप्त अंधविश्वास को बखूबी रेखांकित किया है। अस्मितावाद से प्रारंभ होकर सार्वभौमिक मानवता तक पहुंचना ही उनकी मंजिल है। वाल्मीकि जी की **'खानाबदोश'** कहानी में द्विज पात्र दलितों का समर्थन करना चाहते हैं लेकिन बीच में ही रुक जाते हैं। उन्हें वैचारिक और भावनात्मक रूप से मजबूत होने में अभी

समय लगेगा। कैलाश वानखेड़े जी का **'महू'** कहानी में लेखक ने कॉलेज में एक दलित छात्र की दुर्दशा पर प्रकाश डाला है जहाँ वह शोषण के कारण आत्महत्या कर लेता है, जिसे लेखक हत्या के रूप में प्रतीत है। दलित स्त्री पात्रों में हीनता की भावना गहराई तक व्याप्त है; वे अक्सर अपनी अस्तित्व छिपाकर रहती हैं।

5.2.2.1 आरंभ

कहानी की शुरुआत आकर्षक रहने पर ही पाठक उस कहानी को पढ़ने के लिए उत्सुक होता है। कहानी जिस तरह से शुरू होती है उसमें पाठक को पूरी कहानी पढ़ने के लिए मजबूर करने की ताकत होनी चाहिए। कहानी की शुरुआत प्रकृति वर्णन, घटना, गीत, चित्रकला आदि कई रूपों में होती है। मैंने जिन कहानियों का चयन किया है उनका आरंभ न केवल आकर्षक है बल्कि जिज्ञासा पैदा करने में भी सक्षम है।

जैसे - "पहले मुरिया फिर मारिया और अब मोनिका। जंगल से शहर का परिवेश उसे मोहित करने लगा था। हालाँकि वहाँ भाषा अलग थी, लोगों के शरीर पर लिबास भी अलग था। शहर में जगमगाहट थी और जीने की ललक। महानगर में वह आयी तो उसके भीतर के पंख जैसे खुलने लगे थे। ऊपर आकाश था और नीचे ज़मीन। ख़ूब बड़ा मकान था और सुन्दर भी। प्लेसमेंट के द्वारा यहाँ तक आयी थी। गले में हर समय झुलता ईसा मसीह का क्रास और आँखों में नये जीवन की तलाश। जद्दोजहद की ज़िन्दगी में वह तलाश ही उसे ज़िन्दा रखे हुए थी"।[15] यह मोहनदास नैमिशराय जी के **यात्रा** कहानी का आरंभ है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की **'अम्मा'** कहानी से - "यह कहानी अम्मा की है - आप कह सकते है, लेकिन किसी एक अम्मा की नहीं, न जाने कितनी अम्मा सुबह-सवेरे हाथ में झाड़ू-कनस्तर थामे हुए गली-मुहल्लों में मिल जाएँगी जिनका जर्जर शरीर वक्त के थपेड़े खाकर पुराने दरख्त की तरह समय के साथ गलने लगा है। उनका हर एक पल, एक अनजाने, अदृश्य भविष्य की ओर जा रहा है, जिसके बारे में तमाम भविष्यवाणियाँ, बौध्दिक

कलाबाजियाँ और संकल्पनाएँ बिखर जाती हैं या झूठी साहित होती है"।[16] जिसे पढ़ने के बाद पाठक आगे जानने के लिए उत्सुक हो जाता है।

5.2.2.2 मध्य

कहानी जिस समस्या से शुरू होती है वह बीच में विकसित होती है। शिल्प की दृष्टि से मध्य की विशेष यह है कि यह प्राकृतिक ढंग से विकसित होता है। कथानक का विकास कथाकार द्वारा थोपा हुआ नहीं प्रतीत होना चाहिए, बल्कि वह घटनाओं का स्वाभाविक परिणाम प्रतीत होना चाहिए। रजत रानी मीनू जी की कहानी 'सरोगेट मदर' में फूलमती खुद दूसरों के लिए सरोगेट मदर बन जाती थी और अपनी बेटी चंदा के लिए बच्चा पैदा नहीं कर पाती थी। इसके संबंध कहानी के मध्य भाग में स्पष्ट होता है। जैसे - " 'फूलमती यह तकनीक बहुत कठिन और एक्सपैंसिव यानी महँगी है। जो टीम इसमें काम करती है, उनकी महँगी फीस, इन महीनों के द्वारा हम किसी की कोख में इच्छित स्त्री-पुरुष के शुक्राणु को डाल पाते है। इसके बाद और भी पूरे नौ महीने तक सरोगेसी स्त्री की जाँचें करनी होती है; इस सब में बहुत ज़्यादा पैसा लगता है'। फूलमती ने पुनः अपने मन की शंका जाहिर की थी - 'डॉ. साहब, मैं तीन बार तुम्हारे अस्पताल में खुद मशीन बनी हूँ बच्चे जनने की। अब हम पे संकट ओयो तो हमारी भी सुननी चाहिए। तब तो तुम सब कह रहे थे फूलमती, तुम जैसी स्त्री देवी बनकर हमारी मदद के लिए आगे आती है, नहीं तो यह महँगी मशीनें भी कुछ नहीं कर सकतींट' "।[17]

5.2.2.3 अन्त

कहानी का अंत अधिक महत्वपूर्ण है। यह इसका लक्ष्य स्थल है. जिसके लिए कहानी रूप का निर्माण किया गया। यदि अंत प्रभावशाली है तो कहानी सफल है क्योंकि उसका प्रभाव स्थायी होता है। इसका एक अच्छा उदाहरण है प्रहलाद चन्द दास के 'कजली' कहानी। इस कहानी की नायिका कजली को शादी के बाद उसके ससुराल वालों ने छोड़ दिया है।

कजली अपनी मां की मौत के बाद पूरन पंडित के घर में काम करती है। यह वही काम है जो उसकी माँ कर रही थी। पूरन पंडित और उसके बेटे छोटेलाल ने भी उसका यौन शोषण किया। कहानी के अंत में कजली का विवाह छतर से हो जाता है। छतर की सीता नाम की एक बेटी भी थी। जब छोटेलाल ने सीता को छेड़ने की कोशिश की तो कजली ने उसका विरोध किया। कजली ने पूरन पंडित की लगभग आधी जमीन पर अदालत में दावा दायर किया और उस जमीन पर ससुराल से भागी महिलाओं को काम दिया और सीता का विवाह भी करवाया। इस प्रकार लेखकों ने हर दलित महिला की कहानी का अंत इस प्रकार किया है कि पाठक अंतर्मुख हो जाता है।

5.2.3 चरित्र चित्रण

कहानी का मुख्य आकर्षण पात्र और उनका चरित्र-चित्रण है। आधुनिक समाज में पाठकों के दृष्टिकोण में विविधता आ गई है। अतः पात्रों के चयन एवं उनके चरित्र-चित्रण में खास नवीनता लाने का प्रयास किया जा रहा है। आज का कहानीकार आंतरिक अनुभवों को प्रगाढ़ में रखकर कहानियाँ लिखता है। कहानी में कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनका संबंध उन घटनाओं से होता है या जिनके बारे में उन घटनाओं को घटित होना दिखाया जाता है, पात्र कहलाते हैं।

जहाँ तक दलित स्त्री के चरित्र-चित्रण का प्रश्न है, वह स्त्री दलितों में भी दलित है और विभिन्न मामलों में गैर-दलित स्त्री से अधिक शोषित है। परन्तु यहाँ पर एन. सिंह का मत है कि "दलित समाज में नारी पुरुष के कंधे से कन्धा मिलाकर चलती है। अतः हम कह सकते है कि दलित समाज में नारी को समानता का अधिकार प्राप्त है। वह भी खेत में अपने पति के साथ काम करती है, सड़क पर रोड़ी डालती है"।[18] लेकिन वास्तविक स्थिति अलग है। समाजशास्त्रीय अध्ययन बताते हैं कि यह सच है कि दलित महिलाओं की स्थिति कुछ मायनों में ऊंची जाति की महिलाओं से बेहतर है। वह इस अर्थ में है कि प्रेम, विवाह, यौन

संबंध, विवाह-विच्छेद आदि के कार्यों में अधिक स्वतंत्रता है और आर्थिक निर्भरता भी नहीं है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे सामंती समाज के शोषण से बच गये। दलित समाज में भी ऊंची जातियों के समान ही सामंती मूल्य हैं। कुसुम मेघवाल लिखती हैं- “अपने ही मर्द द्वारा परपुरुषों के हवाले कर देना, शराब पीकर बुरी तरह पीटना, हत्या कर देना, देवदासी बना देना, वैश्यावृत्ति करवाना,... उसके साथ पशुवत व्यवहार करना जैसी अनेक त्रासदियां वह झेलती आ रही है। इन सभी कार्यों में उससे पूछना या उसकी स्वीकृति लेना भी आवश्यक नहीं समझा जाता । पुरुष अपनी मनमर्जी से उस पर हुकूमत करता है। उसे पांव की जूती से अधिक महत्त्व देना पुरुष को भी कभी गवारा नहीं होता”।[19] महिलाओं की समस्या सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप की समस्या है। इस क्षेत्र में दलित महिलाओं की विभिन्न तस्वीरें बनानी होंगी।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की **‘अम्मा**’ कहानी में मिसेज़ चोपड़ा के घर लेट्रीन की सफाई करते हुए जब विनोद पानी डालने के बहाने अम्मा की कमर पकड़ता है तो वह शेरनी के समान पलटकर झाड़ू से वार करती है मिसेज़ चोपड़ा से कहती है- "भैण जी इस हरामी की औलाद से कह देणा... हर एक औरत छिनाल न होवे है”।[20]

सूरजपाल चौहान की ‘**चोट**’ कहानी में रज्जो पवन शर्मा से कहती है - “साले, हरामी..., इतनी देर से..., अपनी अम्मा समझकर, ठहर, मैं बताती हूँ तुझे...”।[21]

सुशीला टाकभौरे जी की कहानी **'कड़वा सच'** में जब शशि जी के पति का दोस्त घर आया तो वह उससे मीठी-मीठी बातें कहने लगा। उनका नाम मोहन था। अति सहज भाव से शशी जी बोली - “मेरे भाई का नाम भी मोहन है। आप मुझे मेरे भाई जैसे ही लगते है”।[22]

हरिराम मीणा की **‘अमली’** कहानी में तिमनगढ़ का राजा अमली को परीक्षा देने के लिए एक मील तक रस्सी पर चलने के लिए कहता है, लेकिन सभी उसे मना कर देते हैं,

लेकिन अमली सबसे कहता है - "राजा ने मेरी परिच्छा लेनी चाई है। मैं कैसे पीछे हट जाऊँगी?"।[23]

5.2.4 देशकाल तथा वातावरण

इस तत्व के अंतर्गत घटना एवं पात्रों से संबंधित देश-काल एवं वातावरण की परिस्थितियों का सजीव वर्णन किया गया है। इस वर्णन से न केवल कहानी की रोचकता बढ़ती है बल्कि उसकी प्रभावशीलता भी बढ़ जाती है। कहानी समय और स्थान की देन है, इसलिए हर देश की कहानी दूसरे देशों से अलग होती है। भारत या इस देश के किसी भी हिस्से में लिखी जाने वाली कहानियों का अपना-अपना परिवेश होता है, जिसकी संस्कृति, सभ्यता, रीति-रिवाज और संस्कार उन पर स्वाभाविक रूप से प्रभाव डालते हैं। यह स्वतः ही उपस्थिति बन जाती है। यही वह आधार है जिस पर सारी गतिविधियाँ चलती हैं। लेखक अपने पात्रों से जुड़ी घटनाओं और परिस्थितियों का सजीव चित्रण करता है। पूरी स्थिति की योजना जानबूझकर और क्रमबद्ध तरीके से बनाई गई है। प्रकृति, ऋतु, दृश्य आदि का अत्यंत संक्षिप्त एवं प्रतीकात्मक रूप में वर्णन करके किसी भी घटना या परिणाम को सजीव एवं यथार्थवादी बनाया जाता है। कहानी में घटनाएँ, स्थान, पात्र, भाषा, वेशभूषा आदि समय और स्थान के अनुसार किया जाता है। जब कहानी दृश्य एवं श्रव्य साधन से समुदाय के सामने आती है तो वे उस देश, काल, परिस्थिति, भाषा शैली, पहनावे और रहन-सहन से भी परिचित हो जाते हैं। कहानी में समय, स्थान एवं पर्यावरण के तत्वों के अंतर्गत उपर्युक्त पृष्ठभूमि के साथ-साथ सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक आचरण, जीवनशैली एवं रीति-रिवाजों आदि का भी चित्रण किया गया है। और दलित कहानियों में समय, स्थान और परिवेश की परिस्थितियाँ थोड़ी बदलती रहती हैं।

प्राचीन काल से ही स्त्रीयों की उपेक्षा की जाती रही है। आज के दौर में स्त्रीयाँ असुरक्षित नजर आती हैं। लगभग हर दिन हम समाचार पत्रों में पढ़ते हैं कि किस तरह

महिलाओं पर अत्याचार हो रहा है। हमारे संतों ने भी स्त्रियों को 'ढोल', 'गवार', 'शूद्र', 'पशु', 'औरत' कहकर उनकी उपेक्षा की है और ये सभी ताड़ना के पात्र हैं। उदाहरणार्थ - **'अपना गाँव'** कहानी में मोहनदास नैमिशराय ने ठाकूर के खेतों में कबूतरी काम करने से नकार देती है, तो ठाकूर का बेटा अपने साथियों के साथ उसे नंगा घुमाता है। पत्रकार को हरिया बताता है, "म्हारी जात के औरतों को पैले से ही ठाकुरों के द्वारा नंगा किया जाता रहा है। उनकी बेइज्जती की जाती रही है। गाँव का रिवाज बन गया है ये"।[24] यानी दलित महिलाओं की स्थिति कितनी बदतर है, इसका चित्रण कहानियों में भी किया गया है।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी दलितों पर अत्याचार किया जाता है। उदाहरण- कैलाश वानखेड़े जी की कहानी 'महू' में प्रोफेसर पढ़ाते हुए कहते हैं - "शरीर में कोई अनावश्यक हड्डी बढ़ने लग जाती है तो उसका ऑपरेशन करना पड़ता है। समाज में भी ज़रूरी है। ज़रूरी है उन्हें आगे बढ़ने से रोका जाये, वरना वे पूरे समाज के लिए घातक होंगे। कैसर की तरह"।[25] इसी कहानी में निचली जाति के बच्चों का आत्मबत्या के बारें में नरेश कहते हैं कि - "कितने ताज्जुब की बात है। हायर एजुकेशन वाला एक भी लड़का या लड़की मरने के पहले चिट्ठी नहीं लिखता। दोस्तों को नहीं बताता। प्रोफ़ेसरों का ख़बर नहीं होती और मर जाता है। आत्महत्या मान लिया जाता है"।[26] शिक्षा के स्तर पर भी दलितों को भोगना पड़ता है।

5.2.5 शीर्षक का प्रयोजन

प्रत्येक कहानी के लिए शीर्षक महत्वपूर्ण है। कहानी पढ़ते समय सबसे पहले पाठक का ध्यान कहानी के शीर्षक पर जाता है। आप लेखन की शुरुआत और अंत में कहानी का नाम दे सकते हैं। यह नामकरण लेखक के विचारों एवं भावनाओं का लघु रूप है। कहानी का शीर्षक ही पाठक को कहानी पढ़ने के लिये प्रेरित करता है। इसीलिए दलित लेखकों ने कहानियों के शीर्षक बहुत ही सरल और आकर्षक ढंग से रखे हैं। जैसे - सुशीला टाकभौरे जी

की 'साक्षातकार', छौआ माँ, ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की 'गोहत्या', 'अम्मा', 'खानाबदोश', रजत रानी मीनू जी की 'सुनीता', 'सरोगेट मदर', टेकचंद जी की 'ए.टी.एम', सुमित्रा महरोल जी की 'प्रतिकार' आदि। शीर्षकों के माध्यम से पाठक कहानी की ओर आकर्षित होता है।

5.2.6 भाषा शैली

भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है और उसे कहने या प्रस्तुत करने के तरीके को शैली कहा जाता है। कहानी में भाषा का सरल एवं स्वाभाविक रूप प्रयोग करना चाहिए। दलित भाषाओं में आकर्षण शक्ति के कारण पाठक कहानी के पात्रों के भीतर जल्दी पहुँच जाता है। भाषा की यही स्पष्टता या शब्द चयन का उत्कृष्ट रूप भाषा को प्रभावशाली बनाता है। यदि कहानी कहने की शैली सुरुचिपूर्ण हो तो एक साधारण कथन भी बहुत आकर्षक लगेगा। दलित कहानी लेखन शैली में यह आकर्षण विद्‌यमान है।

5.2.6.1 वर्णनात्मक शैली

वर्णनात्मक शैली में कथावाचक स्वयं अथवा 'अन्यपुरुष' के माध्यम से पूरी कहानी कहता है। इस शैली की विशिष्टता यह है कि इसमें कथाकार कथावाचक की भाँति तटस्थ होकर कहानी की रचना करता है। इस शैली पर आधारित कहानियाँ पूरी तरह से वर्णनात्मक या व्याख्यात्मक प्रकृति की होती हैं। वर्णनात्मक शैली में बौद्धिक चिन्तन, भावनात्मक वर्णन और विश्लेषण आदि को भी कहानी में आवश्यक स्थानों पर स्थान मिलता है। इस विधा के माध्यम से कहानीकार जीवन के किसी भी पहलू को सपाट ढंग से वर्णित कर सकता है। इस शैली का दोष यह है कि इसमें किसी के अन्तःकरण का विस्तारपूर्वक विश्लेषण एवं विवेचन संभव नहीं है। किसी भी पात्र के बौद्धिक मन का गहराई से विश्लेषण नहीं किया जा सकता। इसका केवल बाह्य रूप से वर्णन किया जा सकता है। आजकल इस शैली का प्रयोग केवल उन्हीं कहानियों में किया जाता है जिनमें 'अन्य पुरुष' का प्रयोग किया गया हो। विश्व का अधिकांश साहित्य इसी शैली में लिखा गया है।

'सुशीला टाकभौरे' जी की **'छौआ माँ'** कहानी से उदाहरण - "कारिन्दे मशाल लेकर उसके चारों तरफ घुम रहे है। आग का एक घेरा बन गया है और वह आग में घिर चुकी है। उसे ग के सिवा कुछ भी नजर नहीं आ रहा है। मशाल से चिनगारियाँ निकल रही है। जैसे आकाश के तारे टूट कर जमीन पर गिर रहे है और जमीन तक आते-आते वे अंधेरे में गुम हो जाते है। छौआ माँ को लगा जैसे आग से घिरकर वह भी अंधेरे में गुम हो रही है।

उसका सिर चकराने लगा। आँखों में अंधेरा छाने लगा कान सूत्र हो गए। बोलने-चिल्लाने की शक्ति भी समाप्त हो गई। सउसका सिर चकराने लगा। आँखों में अंधेरा छाने लगा कान सूत्र हो गए। बोलने-चिल्लाने की शक्ति भी समाप्त हो गई। सब तरफ आग ही आग। न उसे कुछ दिखाई दे रहा है, न कुछ सुनाई दे रहा है। वह फटी-फटी आँखों से आग को देख रही है। आग का दरिया उसके करीब और करीब आता गया"।[27]

उपरोक्त उदाहरण भय का वर्णन करता है। जब कोई दलित अपने खिलाफ हो रहे अत्याचारों का विरोध करता है तो उसे अन्याय का भय घेर लेता है। छौआ मां भी अपना पारंपरिक पेशा छोड़ देती हैं। इस वजह से गांव के ऊंची जाति के लोग छौआ मां और उसके घर को जलाने के लिए अपने सेवकों को मशाल लेकर भेजते हैं।

'सूरजपाल चौहान' की **'चोट'** कहानी से - "साफ रंग, तीखे नैन-नक्श और सुडौल काया पायी थी रज्जो ने। हाव-भाव और बात करने के सलीके से भी वह अन्य चतुर्थ श्रेणी की महिलाओं से अलग दिखती थी। साथ ही साथ व्यवहार कुशलता व अपनी बातचीत के ढ़ग से वह हाई स्कूल पास लगती थी" ।[28] यहाँ रज्जो की लावण्य की वर्णन किया गया है।

'मोहनदास नैमिशराय' की **'यात्रा'** कहानी से - "समन्दर से नदी, नदी से नहर, नहर से जोहड़ और जोहड़ से नाले। हर एक के बाद नया रँगती गयी। अब उसके जीवन में रह गयी थी सिर्फ स्मृतियाँ, खौफ़नाक नागफनी-सी। यादें उभरती तो साथ में काँटे भी उभरते। वे उसे चारों तरफ से घेर लेते। वह उनमें बिंधने लगती। स्मृतियाँ उसके लिए जैसे सजा बन गयी

थी। कभी घण्टों बीत जाते, कभी पूरा-पूरा दिन। वह याद करते हुए सिसकती रहती। आँखों में आँसू आते, बहने लगते, कुछ समय बाद गीली पलकें भी सूखने लगती। पर जुर्म क्या था उसका? वह पूछती, कहीं से कोई जवाब नहीं आता"।[29] मन में फैली यादों को यहां निरूपित किया है। इस विवरण से पता चलता है कि ये यादें अच्छी यादें नहीं हैं।

'हरिराम मीणा' जी की 'अमली' कहानी से - "चौमासा की ऋतु बीत गयी थी। समतलीय इलाक़ों में रहने वाले गुजर व मीणा जाति के पशुपालक अपने मवेशियों को लेकर डांग के पहाडों से नीचे उतर रहे थे। उनकी अस्थायी खिरकाड़ियाँ खाली होती जा रही थीं। बरसात के पूरे चार महीनों की अवधी में डांग खिरकाड़ियाँ आबाद रहती हैं, विशेषकर दुधारू मवेशियों से। यहाँ पशुओं के हरे चारे की कोई कमी नहीं। डांग की सारी धरती घास की हरी चादर ओढ़े रहती है। बीच-बीच में नाना प्रकार के फुल-फलवान, पेड़-पौधों व अन्य वनस्पतियों की बहुतायत के साथ"।[30]

"पास ही थी सागर नामक झील जो लबालब भरी थी निथरे पानी से। झील के किनारे की ज़मीन पर लहलहा रही थी हरी दूब की वसुन्दरा-केशराशि। मन्द-मन्द बह रही हवा में बरसात की छुअन महसूस की जा सकती थी" ।[31] इन कहानियों में वर्णनात्मक शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

5.2.6.2 आत्मकथा शैली

आत्मकथात्मक शैली में कहानीकार या कहानी के किसी पात्र 'मैं' से जुड़े कई अनुभवों और स्मृतियों से जुड़े कई चित्रों का विश्लेषण है। इस शैली में कहानी घटनाओं एवं संघर्षों के सहारे विकसित होती है। इस शैली के माध्यम से मानव मन के गहरे विषयों एवं भावनाओं को कहानियों के रूप में व्यक्त किया जाता है।

पूरी कहानी आत्मकथात्मक शैली में, प्रत्यक्ष विवरण में बताई गई है। इसमें कहानी 'उत्तम-पुरुष' 'मैं' के माध्यम से ही कही गई है। इस शैली में एक ही पात्र पूरी कहानी कह

देता है और कभी-कभी कहानी का प्रत्येक पात्र अपनी कहानी और दृष्टिकोण को अतीत के रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत करता है। जब रचनाकार रचना के केन्द्र में रहता है तो उसकी शैली आत्मकथात्मक होती है। इस शैली का प्रयोग करते हुए कथाकार स्वयं को समाज से जुड़ी समस्याओं से जोड़ता है। कभी-कभी कथावाचक स्वयं कहानी के बीच में आकर अपने विचार व्यक्त करता है, लेकिन अधिकतर वे नायक और अन्य के होते हैं। घटनाओं को या तो सह-नायक या दोनों में मौजूद है। इस शैली में लिखी गई दलित कहानियाँ आत्मकथा और संस्मरण का भी आभास देती हैं।

'सुशीला टाकभौरे' जी की 'कड़वा सच' आत्मकथात्मक शैली में रचित कहानी है। "मैंने कृतज्ञता के साथ पन्ने ले लिए। कहानी को नए रूप में लिखने की हामी भरी, साथ ही अच्छा लिखने का प्रयत्न करने का विश्वास दिलाया। सुधीर जी ने जाते-जाते कहा कि वे जल्दी ही किसी दिन आकर मेरी नयी कहानी देखेंगे। सुधीर जी के जाने के बाद मैं अपनी कहानियों पर बहुत विचार करती रही। अपनी कहानियों के विषय में सुधीर जी की कही गयी बातों पर चिन्तन-मनन करती रही। उन्होंने जो कुछ कहा, वह सच था, लेकिन मेरा अपना भी सच था। तब मैं क्या करूँ? कैसे निकलूँ अपने छोटे से घेरे के बाहर? मन बहुत बेचैन हो गया। मैंने सोचा नहीं था कि सूधीर जी इस तरह, इतना नाराज़ होंगे। मेरी कहानियों की आलोचना इस तरह करेंगे और मुझे ऊँचे और कड़े शब्दों में इतना कुछ कहेंगे। इस आकस्मिक चोट ने मेरे कोमल मन को द्रवित कर दिया"।[32] उपरोक्त अवतरण में लेखिका ने नायिका (शशि वाल्मीकि) की माध्यम से अपने आप को परख रही है। वह अपने लेखन को ओर बेहतर करने की प्रयत्न कर रही है।

5.2.6.3 स्वप्न शैली

स्वप्न शैली में एक प्रकार की विशेष अनुभूति सन्निहित होती है और उसमें एक विशेष भावना अन्तर्निहित होती है। स्वप्न शैली में जो भी कहानियाँ लिखी हैं वे यथार्थ की

ओर इशारा करती हैं। जब इच्छाएं और विचार अतृप्त होते हैं तो वे उन्हें सपनों के रूप में दिखाई देते हैं। इस शैली के द्वारा व्यक्ति की भावनाओं और इच्छाओं को स्वप्नों के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है। सुशीला टाकभौरे जी ने कम मात्रा में सही इस शैली का प्रयोग किया है।

'त्रिशूल' कहानी की रेणु स्वप्न में एक युवक को देखती है। स्वप्न में वह पार्वती और युवक शिव जैसे लगती है। "पार्वती लकड़ी के जलते हुए बड़े बड़े गोल टुकड़े शंकर के सामने डाल रही थी। शिवशंकर पार्वती के पास आना चाहते थे। पार्वती ड़र रही थी। वह उनसे दूर रहना चाहती थी। शंकर उसके पास न आ सके, इसका वह पूरा प्रयत्न कर रही थी। शंकर के हाथ में सिर से ऊंचा त्रिशूल था। ऊंचा-पूरा शरीर दिखाई देता हुआ भी अदृश्य, आच्छादित। पूर्ण आवेग, हौसला व इच्छाशक्ति के साथ वे पार्वती के निकट आने का निश्चय भरा प्रयास कर रहे थे। शिवशंकर पार्वती की निकटता चाहते थे। भयभीत पार्वती ऐसा नहीं होने देना चाहती थी। वह मार्ग में व्यवधान उपस्थित कर रही थी।

पार्वती के पास है उसकी मोहिनी, उसी की प्रतिकृति, उसकी नन्ही बेटी । उसे डर है, शंकर उसकी बेटी छीन लेंगे। पार्वती अपने अस्तित्व को इस तरह देना नहीं चाहती। वह शंकर को और उनके लगाव को देखकर भी अनदेखा करते हुए, अपने अस्तित्व की रक्षा करना चाहती है। शंकर थोड़ी देर के लिए आँखों से अदृश्य हो गये, फिर भी पार्वती भयभीत है– शंकर जरूर फिर से आकर, उसे मोहिनी से अलग कर देंगे। वह खूब सचेत है, व्यवधान की पूरी व्यवस्था कर लेना चाहती है कि ऐसा हरगिज न हो"।[33]

5.2.6.4 संवाद शैली

संवाद शैली कहानी की मुख्य शैली है। संवाद का अर्थ है वार्तालाप या कथन। दोनों भाषाओं की कहानियों में यह शैली के मध्य से पात्रों के विचार, घुटन और मनःस्थिति का

चित्रण किया गया है। इसके माध्यम से कहानी में संक्षिप्तता, गतिशीलता, रोचकता, भावुकता आदि विशेषताओं का संचार होता है अर्थात संवाद शैली कहानी के प्रवाह को तेज करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

जैसे - दीपा जी की **'जीत'** कहानी में हेड पुलिस निरीक्षक परमानन्द ठाकुर ने रेखा से कहा - " 'आपने शारीरिक परीक्षा में बहुत अच्छा प्रदर्शन किया'।

'धन्यवाद सर'। प्रसन्नता से मुस्कुराते हुए रेखा बोली

'लिखित परीक्षा में भी बेहतरीन प्रदर्शन करना। बेस्ट ऑफ़ लक'

'थैंक यू सर'।

'तब आपका चयन होना निश्चित होगा'

'ये सब मेरे माता-पिता की मेहनत और आशिर्वाद का फल है'

'आपके पिता क्या काम करते है?'

'सर! वे मैला ढोने का काम करते हैं'

'क्या? क्या कहा तुमने?" ।[34]

हेड प्रधान पुलिस निरीक्षक ने रेखा से शौचालय साफ करने के लिए कहा क्योंकि उसे पता चल गया था कि वह एक दलित परिवार की लड़की है। यहां ऊंची जाति के लोगों का निचली जाति के लोगों के प्रति कठोर रवैया व्यक्त किया गया है।

रजत रानी मीनू जी की **'सुनीती'** कहानी से - " 'एक दिन मां ने कहा, "सुनीता, आज स्कूल मत जा! भाई को सम्भालना है। घर में काम-काज बहुत ज्यादा है"

सुनीता बोली - माँ, कल से मेरी परीक्षाएँ। मुझे आज स्कूल जाना जरूरी है। टीचर इंपोर्टेंट बता रही है"

माँ ने सुनीता के पिता को आवाज़ लगाते हुए कहा - “एजी, सुनते हो! यह तुम्हारी लाड़ली अब तो जबान लड़ाने लगी है”

छेदालाल ने कहा - “क्या बात है भई? क्यों शोर मचा रही हो?”

सुनीता की माँ ने फिर से अपनी बात दोहराते हुए कहा - “आज इस लड़की को स्कूल जाने से मना किया, तो कहती है कल से मेरी परीक्षाएँ है”

पिताजी ने तीखे स्वर में डाँटा - “ ए सुनीता, कान खोल के सुन! हमें तुम्हें कलट्टर-वलट्टर तो बनाना है नहीं, और न ही तू बन पाएगी। फिर तेरी पढाई लल्ला से बढ़कर तो नहीं है, वैसे भी तू पराए घर जाएगी। तो चिट्ठी- पत्री लायक थोडी-सी पढ़ जा। वंश तो लल्ला ही चलाएगा”।[35]

जब परिवार में दूसरी संतान लड़की पैदा होती है तो घर में कोई भी खुशी का इजहार नहीं करता। हमारे समाज में लड़कियों को अपने परिवार से वंचित किया जा रहा है।

5.2.6.5 डायरी शैली

इसमें पात्र डायरी के माध्यम से अन्य पात्रों तथा स्वयं से संबंधित घटनाओं, विचारों तथा भावनाओं का वर्णन करता है।

सुशीला टाकभौरे’ जी की 'मेरा समाज' डायरी शैली में लिखी कहानी है। इसमें नायिका ने स्वयं अपने जीवन में घट रही घटनाओं का परीक्षण किया है। साथ ही वह अपने विचारों और आचरण से समाज में लोगों तक अपनी बात भी पहुंचा रही हैं। जैसे - “मुझे शराब पीनेवाले लोग कभी अच्छे नहीं लगते। आपस में झगड़ने वालों को देख मुझे भय लगता, साथ ही गुस्सा भी आता। कभी कोई नशाकरने वाला अपने घर में झगड़ा करता, यह देखकर मैं अपनी भावी जीवन के प्रति सशंकित हो जाती थी कि पता नहीं अपने जीवन में मुझे कैसी

परिस्थितियों का सामना करना पडेगा? मैट्रिक करने के बाद गंभीर रहने वाली मैं अपने भविष्य के प्रति निराशा के साथ तटस्थ होने लगी थी"।[36]

"मै समझने लगी थी, लोग इससे आगे सोच ही नहीं सकते हैं। बेटी का जन्म होते ही उसकी पढ़ाई की नहीं, शादी की चिन्ता की जाती है। शादी और बच्चे जैसे जीवन का लक्ष्य केवल यही था। इस तरह समाज आगे नहीं बढ़ सकता। इस पारम्परिक विचारधारा को तोड़ना जरूरी है। तभी समाज नये विचारों को अपना सकेंगा। मेरा यह सपना है, मैं अपने समाज में परिवर्तन लाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करती रहूँ। समाज की भोली भाली लड़कियों को बचपन से ही जागृत बनने की, शिक्षा के प्रति जिज्ञासू रहने की और आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देती रहूँ–यही मेरी अभिलाषा है"।[37]

सुशीला टाकभौरे जी की 'झरोखे' कहानी से - "स्कूल में मेरा नाम सुशीला लिखवाया गया, जबकि घर मे सब शीला कहते रहे । बचपन से ही शांत, गंभीर स्वभाव की थी । बहुत छोटी आयु की बातें याद नहीं, लेकिन इतना अवश्य याद है, जब मैं छः वर्ष की थी तब यह जान गयी थी कि इसी वर्ष स्कूल में मेरा नाम लिखाया जाएगा। गरमी की छुट्टियों के बाद, स्कूल खुलने पर मैं स्कूल में नाम लिखवाने के लिए और स्कूल जाने के लिऐ बेचैन हो जाती । माँ से यही कहती–"मेरा नाम स्कूल में कब लिखवाएंगे?

तब मां पिताजी से कहती–"देखो तो इसे, चैन नहीं लेने दे रही है। स्कूल जाकर इसका नाम तो लिखवा दो । इस तरह मेरा नाम स्कूल में लिखवा दिया गया। मैं स्कूल जाने लगी। यह बात जुलाई 1960 की है।

सभी दिन की बातें याद नहीं हैं । कोई कोई विशेष दिन याद हैं, जब पिताजी अक्षर ज्ञान कराते थे, स्लेट पट्टी पर अ आ इ ई लिखना सिखाते। कभी नाराज होकर डांट देते। मगर हमेशा प्यार से हौंसला बढ़ाते थे। बड़े भाई पढ़ाते समय डांटते तब पिताजी उन्हें डांटने के लिए मना करते थे"।[38]

“मुझे अपनी जाति के विषय में बचपन से जानकारी थी। माता पिता बचपन से सिखाकर और समझाकर रखते थे- 'हम निम्न जाति के हैं, ऊंची जाति के लोग अपने से भेदभाव मानते हैं। इसलिए कभी किसी सहेली के घर के भीतर नहीं जाना, न ही उनके घर के बर्तन में कुछ खाना पीना । वे लोग अपन से ऐतराज करते हैं। इसलिए अपन ने भी कुछ कहने सुनने का मौका नहीं देना चाहिए।' माँ की सिखाई सब अच्छी बातों के साथ यह बात भी अच्छी तरह याद थी कि हम अछूत हैं और जहां तक हो सके हमें खुद सवर्णो से दूर रहना चाहिए।

'सवर्ण लोग हमारे साथ खाने पीने में बुरा मानते हैं, हम उनके घर के भीतर नहीं जा सकते' - यह सब सोचकर मन में एक संकोच का भाव हमेशा बना रहता था। इसी संकोच भाव के कारण साथ चलते समय मैं कभी भी आगे या बीच में नहीं चलती थी, हमेशा पीछे रहती। पीछे रहने पर कई बार शिक्षक मुझे डांट देते और आगे चलने के लिए कहते । मगर संकोच और भय के कारण मैं पीछे ही रहती थी” ।[39]

डायरी शैली में लिखी इस कहानी में लेखिका स्वयं अपने अनुभव बता रही हैं। इसमें उनके जीवन में बचपन से लेकर वयस्क होने तक घटित घटनाओं को व्यक्त किया गया है।

5.2.6.5 चित्रात्मक शैली

चित्रात्मक शैली में कहानी की विषयवस्तु का सजीव चित्रण पर जोर दिया गया है। यह शैली एक कहानीकार की सूक्ष्मदर्शी को उजागर करती है।

अजय नावरिया जी की कहानी **'इज्जत'** इसी शैली में लिखी गई है। इस पूरी कहानी को पढ़ते समय कहानी की प्रत्येक घटना हमारे मन में चित्र के रूप में अंकित हो जाती है। कहानी की तस्वीर शुरू से अंत तक दिमाग में मौजूद रहती है। उदाहरण - “ 'सुखबीर के ये शब्द उषा पर भारी पत्थरों की तरह गिरे। घबरा गयी एकदम से, चक्कर-सा आता महसूस हुआ। पर संभाल गयी खुद को, तुरन्त ही जीप से नीचे कुदी और सड़क की तरफ दौड़ पड़ी -

‘बचाओं-बचाओ’। पर दूर-दूर तक सुनने वाला कौन था वहाँ? जयदेव ने उसे दौड़ने दिया। अपनी मोटर-सईकिल स्टार्ट कर वह उसके पास दस सेकण्ड से भी कम वक़्त में पहूँच गया। सुखबीर भी अपनी जीप वहीं ले आया। उषा बूरी तरह हाँफने लगी। तीनों भूखे भेडियों की तरह उसे घूरने लगे।

सूखबीर जीप से कूदकर तेज़ी से आगे बढ़ा। उसने उषा की ठोड़ी पर प्यार से हाथ फेरा। उसी पल उषा ने अपने घुटने की एक ज़ोरदार चोट सुखबीर के अंडकोष पर की। वह एक हृदय-विदारक चीख़ के साथ एक तरफ़ लुढ़क गया। सुखबीर की यह हालत देख जयदेव के बढ़ते कदम पीछे को हो गये। सुखबीर घुटने मोड़े ज़मीन पर पड़ा-पड़ा कराह रहा था”।[40]

5.2.6.6 नाटकीय शैली

नाटकीय शैली या नाट्य शैली वह कहानियाँ हैं जिनमें संवादों के माध्यम से पात्रों का विकास होता है और उनके माध्यम से कथानक का विकास होता है। इस शैली की विशेषता वस्तुओं और पात्रों का संयोजन है। यह स्टाइल आकर्षक और मजेदार है. क्योंकि पूरी कहानी में बहुत सारे संवाद हैं, पाठक पात्रों को बोलने के लिए मजबूर किए बिना कहानी को तुरंत समझ जाते हैं। जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'पगड़ी' इसी शैली में लिखी गई है। इसमें कहानी को नौ भागों में विभाजित किया है। पहले भाग में नायिका सरबतिया के जीवन और परिवार को अंकित किया गया हैं, दूसरे भाग में उसके बेटे के विवाह कार्यक्रम में आयोजित पंचों की वाद-विवाद दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में पंचों द्वारा सरबतिया को पगड़ी बांधने का निर्णय लेने के साथ ही कहानी समाप्त हो जाती है।

कैलाश वानखेड़े जी की ‘**महू**’ कहानी भी नाटकीय शैली में ही लिखी है। पहले भाग का नाम ‘उदास दिस्मब उसी साल का जिस साल पत्ते हरे थे’ है। यहाँ कोलेज से लापता हुई नायिका प्रज्ञा को ढूढ़ने के लिए उसकी दोस्तों घर आने का चित्रण किया है। दुसरे भाग का नाम कॉलेज का पहला बसन्त, रंगहीन है इसमें कॉलेज का पहला दिन का चित्रण है। असली

कहानी यहीं से शुरू होती है। छुआछूत, भेदभाव, जाति आदि को केन्द्र में रखकर शिक्षा से वंचित दलितों के या शिक्षा मिलने पर भी उपेक्षित दलितों का चित्रण मिलते है। इस कहानी की बाकी भागों का नाम है 'अगस्त हरे रंग का', 'जून जैसा कोई महीना था ख़ामोश', 'अप्रैल, हरे पत्ते झड़ गये थे और कोपल फूटने लगी'।

5.2.6.7 फैटैसी

जब पुरानी या पारंपरिक शैलियाँ वास्तविकता को व्यक्त करने में अपर्याप्त होती हैं, तो फंतासी या जंगली कल्पना का उपयोग किया जाता है। नए कहानीकारों ने वर्तमान जीवन में व्याप्त विसंगति, तर्कहीनता, अराजकता आदि को चित्रित करने के लिए इस शैली का उपयोग किया है।

डॉ. निर्मल सिंहल के विचार में - "फैंटेसी शैली में व्यक्ति अपने समूचे रूप में उपस्थित होकर अपने समय का साक्षात् प्रतिनिधित्व करता है"।[41]

डॉ. नामवर सिंह की नज़र में - "वह एक ऐसी दुनिया की कहानी है जिसमें इस दुनिया के कायदे-कानून लागू नहीं होते, अर्थात उसके कायदे-कानून अलग है और अपने है। लेकिन सिर्फ इसी बात से क्या वह दुनिया अवास्तविक है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह हमारी अपरिचित दुनिया से अधिक वास्तविक है? अथवा वास्तविक दुनिया तो वही है जो अपाततः "फैंटास्टिक" मालूम हो रही है! हो सकता है कि दुनिया के नियमों ने हमारी आँखों पर परदा डाल दिया हो और अभ्यासवश अति परिचित को ही हम वास्तविक मानकर चल रहे हो। कहीं ऐसा तो नहीं है कि अन्तर्देशी लेखक ने इस चालू दुनिया के अन्दर छिपी उस असली दुनिया को सहसा देख लिया है और पूरे विस्मय के साथ हमारे सामने उसे उद्घाटित कर दिया और अपरिचय तथा अनभ्यास के कारण हम उसे "फैंटास्टिक" कह रहे है"।[42] वास्तविकता में, फंतासी स्वप्न-जैसी छवियों और प्रतीकों की एक संरचना है। यथार्थ जीवन में घटनाएँ सम्भवनीय नहीं होती, वे फंतासी में सम्भवनीय जान पड़ती है।

डॉ. पुष्पपाल सिंह के अनुसार - “आज का तथाकथित व्यक्तित्व एक ओर टूटते हुए सांस्कृतिक मूल्य से संत्रस्त है, तो दूसरी ओर विडम्बनाग्रस्त, आधुनिकता से आकर्षण का तो प्रश्न नहीं उठता। दोनों ओर से क्षुब्द और संत्रस्त होने के कारण उसकी इकाई से निरन्तर विस्फोट हो रहा है। उसके इस संत्रास, क्षोभ, उत्पीडन और विस्फोट को अभिव्यक्ति देने में फंतासी विधा साहित्य की किसी भी विधा से अधिक सशक्त है, बशर्ते उसका प्रयोग व्यंग्य और चोट के लिए किया जाए; महज़ दिल बहलाने या हलके मनोरंजन के लिए नहीं”।[43]

वास्तविक परिस्थितियों के बीच रहते हुए भी कभी-कभी व्यक्ति को डरावना परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। जब तक व्यक्ति में बाहरी ताकतों से लड़ने की शक्ति है, तब तक वह अपना विरोध और विद्रोह व्यक्त कर सकता है। जब विरोधी शक्ति या बाहरी शक्ति उसकी ताकत से अधिक शक्तिशाली होती है, तो उसके मन में डर पैदा होता है। वह कमजोर होने लगता है। जब भाषा की पुरानी छवियां यह बताने में असमर्थ होती हैं कि व्यक्ति किस मानसिकता से गुजर रहा है, तो उस चरित्र की यातनाएं और दुख कल्पना द्वारा उत्पन्न छवियों के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं।

सुशीला टाकभौरे जी की ‘त्रिशूल’ कहानी से काल्पनिक शैली में कुछ अंश - “ रेणु की जागती आँखों में मधुर स्वप्न तैरने लगता है वह देखती है- 'उसकी बेटी मोहिनी मेडीकल कॉलेज की छात्रा के रूप में सफेद कोट पहने चली आ रही...' तभी दरवाजा खटखटाने की आवाज आयी। मोहिनी के पापा कह रहे थे– “मोहिनी सो गई है” ।[44]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'जंगल की रानी' में सोमनाथ के विचारों का कल्पित अंश है - “कमली ने आत्महत्या की है यह ख्याल ही उसे गलत और गुमराह करनेवाला लग रहा था। रेलवे लाइन के पास लाश का मिलना वह भी महँगी साड़ी में, जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की होगी कमली ने”।[45]

5.3 आधुनिक दलित कहानियों में भाषा वैशिष्ट्य

दलित साहित्य भारतीय समाज का यथार्थ है। दलितों की बस्तियाँ गाँवों से अलग रही हैं। वहां के सुख-दुख अलग-अलग रहे हैं। उनकी अपनी भाषा है। दलितों की भाषा को कभी सम्मान नहीं मिला। सम्मान उन लोगों की भाषा को दिया जाता है जो विजयी हैं, समृद्ध हैं और तथाकथित 'सभ्य' हैं। यहां हमेशा से ही दलितों की उपेक्षा की गयी है। दलितों और दलित महिलाओं का अपमान करना ऊंची जाति का समाज अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। इसलिए वे हमेशा उसके साथ दुर्व्यवहार करते रहे हैं। दलित कहानियों में भी ऊंची जातियों की भाषा का प्रकाश डाला गया है। दलित महिलाएँ स्वयं श्रमिक रही हैं। उनकी भाषा में भी गाली-गलौज आम बात रही है। अश्लीलता भी है। इसी कारण से सभ्य समाज के समीक्षक दलित साहित्य की भाषा पर आपत्ति जताते हैं। उसका जवाब देते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते है -"सच तो यह है कि मैंने जैसा जीवन देखा-भोगा, महसूस किया, वैसा ही लिखने की, दिखाने की कोशिश की। मेरे ईर्द-गिर्द की दुनिया अश्लील है तो इस अश्लीलता को मैं शब्दों के किस आवरण से छिपाने की कोशिश करता? जीवन की नग्रता मात्र शब्दों से अभिव्यक्ति नहीं होती है, स्थितियाँ और सामाजिक मान्यताएँ भी अश्लील होती है, जिनका सीधा ताल्लुक संस्कारों और परिवेश से होता है"।[46]

ओमप्रकाश वाल्मिकी के इस कथन से स्पष्ट है कि हम केवल किताबों के आधार पर भाषा को गलत नहीं ठहरा सकते। भाषा समाज में बोली जाती है, समाज में ही जीवित रहती है, इसलिए इसका मूल्यांकन करते समय हमें समाज को ध्यान में रखना चाहिए। दलित कहानी की भाषा काल्पनिक नहीं है। उसे एक दलित बस्ती से उठाया गया है। दलित कहानियों की भाषा में चित्रात्मकता, काव्यात्मकता आदि बातें हमें बिना खोजे ही मिल जाती हैं। इसका कारण यह है कि यह भाषा एक जीवित भाषा है। यह वास्तविक जीवन से ली गयी भाषा है।

भाषा भावाभिव्यक्ति का माध्यम है। साहित्य की सभी विधाओं में उसका सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ विद्वान भाषा और शैली को दो अलग चीज़े मानते है। डॉ. सुरेश बाबर के अनुसार -"भाषा मनोभावों की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। शैली उस साधन का उपयोग करने की रीति अथवा पद्धति है। भाषा की शक्ति पर शैली की उत्कृष्टता अवलंबित होती है"।[47]

5.4 शब्द चयन

साहित्यिक कृतियों में उच्चारण को समझने का श्रम अक्सर लेखकों और पाठकों के बीच संचार प्रक्रिया के एक अनिवार्य हिस्से के रूप में देखा जाता है। यह संभव है कि कई लगभग समान शब्दों का आम तौर पर एक ही अर्थ हो, लेकिन नाटकीय रूप से अलग-अलग तरीकों से एक ही विचार हो। किसी कथा या कहानी में शब्दों का चयन बहुत जल्दी हास्य, गंभीरता, या बीच में कहीं आने वाली किसी विभिन्न भावना को अभिव्यक्त कर सकता है। सामान्य तौर पर, अधिक अनुभवी लेखक अपने काम की शुरुआती पंक्तियों या पैराग्राफों में शब्द चयन के महत्व से अवगत होते हैं। क्योंकि इन प्रारंभिक अंशों में लेखक द्वारा भाषा के उपयोग पर पाठक की प्रतिक्रिया कभी-कभी यह निर्धारित कर सकती है कि पाठक लेखक के काम को पढ़ना जारी रखता है या किसी और चीज़ पर आगे बढ़ता है। लिखित कार्यों में शब्द-चयन के माध्यम से मनोदशा और स्वर का संचार किया जा सकता है। किसी साहित्यिक कृति को लिखते समय, विभिन्न प्रकार की शब्दावली को संयोजित करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। अनौपचारिक और औपचारिक भाषा का संयोजन विशिष्ट प्रकार के पात्रों वाली कुछ कहानियों में सफल हो सकता है, फिर भी, अन्य परिस्थितियों में, यह लेखन की समग्र गुणवत्ता के लिए हानिकारक हो सकता है। कुछ लेखक भाषा की एक ही शैली का उपयोग करके अपने विचारों को संप्रेषित करना चुनते हैं क्योंकि शोध से पता चला है कि ऐसा करने का यह सबसे प्रभावी तरीका है। अन्य लोग विभिन्न प्रकार के विषयों का पता

लगाना चाहते हैं, जिसके लिए उन्हें विभिन्न प्रकार की बोलने की शैलियों को अपनाने की आवश्यकता होती है। एक और समस्या जिसका कभी-कभी लेखकों को सामना करना पड़ता है वह है स्थानीय शब्दावली का अत्यधिक प्रयोग। आमतौर पर ऐसा ही होता है क्योंकि केवल एक विशिष्ट पाठक ही इन शब्दों से जुड़ सकता है। कुछ साहित्यिक आलोचक विशेषणों के अत्यधिक उपयोग को शब्द-विन्यास का मुद्दा मानते हैं। यह दृष्टिकोण कुछ साहित्यिक समालोचकों का है। वास्तव में शब्द चयन कई प्रकार के होते हैं।

5.4.1 तत्सम

तत्सम शब्द संस्कृत के दो शब्दों तत्+सम् से मिलकर बना है। तत् का अर्थ है उसके, और सम का अर्थ है समान अर्थात ज्यों का त्यों। जो शब्द बिना किसी परिवर्तन के संस्कृत से लिए गए हैं उन्हें तत्सम शब्द कहते हैं। इनमें कोई ध्वनि परिवर्तन नहीं है। हिंदी, बंगाली, कोंकणी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, सिंहली आदि में कई शब्द सीधे संस्कृत से लिए गए हैं, क्योंकि इनमें से कई भाषाओं की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है। तत्सम शब्दों के अंत में 'क्ष', 'श्र', 'व', 'ष', 'ऋ' वर्ण आता है। प्रस्तुत कहानी संग्रहों में भी लेखक ने तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वे जिस परिवेश में रहते हैं वहां के शब्दों का शामिल होना स्वाभाविक है।

चयनित कहानियों में प्रयुक्त तत्सम शब्द = पक्षी, वन, अमूल्य,आश्चर्य, पूर्व, आश्रय, ग्राहक, उत्साह, प्रिय, कार्य, कर्तव्य, गायक, ग्रामीण, भक्त, प्रकट, किरण, विवाह, धर्म, मनुष्य, मृत्यु, स्तन, मित्र, अंश, अतिथि, अन्न, मूल्य, अक्षर, युक्ति, क्षति, आकाश, शीर्ष, युवा, आँचल, राजा, आदेश, एवं, परीक्षा, नियम, पत्र, प्रसारण, चरण, व्यतीत, गंभीर, ध्वनी, वेदना, धैर्य, स्थान, शत, दण्ड, मित्र, शिक्षक, उल्लास, मूत्रालय, धूप, आशा, अर्पण, क्षमा, उत्साह, शिक्षा, क्षेत्र, नदी, प्रकाश, कृपा, किरण।

5.4.2 तत्भव

मूल भाषा संस्कृत के वे शब्द, जिन्होंने हिन्दी में अपना रूप बदल लिया है, तद्भव शब्द कहलाते हैं। तद्भव शब्द तत् और भव के मेल से बना शब्द है, जिसमें तत् का अर्थ उससे (संस्कृत) तथा भाव का अर्थ विकसित होता है। अतः तद्भव शब्द का शाब्दिक अर्थ उससे (संस्कृत) निकला। हिन्दी के सभी क्रिया शब्द तद्भव शब्द हैं। इसमें उच्चारण आसान हो जाता है. तद्भव का शाब्दिक अर्थ है "उससे बने"। समय और परिस्थिति के कारण तत्सम शब्दों में जो परिवर्तन हो जाता है, उसे तद्भव शब्द कहते हैं। संस्कृत के जो शब्द प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी आदि से होते हुए आज परिवर्तित रूप में मिलते हैं, उन्हें तद्भव शब्द कहा जाता है।

चयनित कहानियों में प्रयुक्त तद्भव शब्द - आँसू, कुआँ, छाया, अंधेरा, गिनती, काम, आधा, ऊँचा, कुत्ता, चाँद, जीभ, किसान, आज, अचानक, दुबला, पिता, ब्याह, दुख, चमार, आग, कान, नाच, भूखा, आवाज, सच, तुरंत, आगे, बिरादरी, फूल, मीठा, हाथ, पहचान, सूअर, गर्दन, भिखारी, बरसात, पसीना, जमीन, भैंस, क्यों, नया, प्यास, त्यौहार, सीख, अकेला, भाई, खेत, खांसी, आलस, पहर, नींद, हँसती, घर, पैर, पर, सिर, साला, लोग, चबाना, साँवला, गोबर, सेठ, सांस, सूखा, पत्थर, चमड़ा, बूंद, गेंहूँ, मामा, ससुराल, आदेश।

5.4.3 देशज शब्द

देशी शब्द वे शब्द होते हैं जो स्थानीय भाषा के शब्द होते हैं, ये देश की विभिन्न बोलियों से लिये जाते हैं, अर्थात् तत्सम को छोड़कर जो शब्द देश की विभिन्न बोलियों से आते हैं, वे देशी शब्द होते हैं। आवश्यकतानुसार इनका उपयोग किया जाता है। वे शब्द जिनकी उत्पत्ति ज्ञात नहीं है लेकिन प्रयोग में हैं। ऐसे शब्दों को देशज शब्द कहते हैं। ये शब्द आमतौर पर क्षेत्रीय भाषा में उपयोग किये जाते हैं। दूसरे शब्दों में, वे शब्द जिनकी उत्पत्ति देश की विभिन्न बोलियों से हुई है, अर्थात् वे शब्द जिनकी उत्पत्ति ज्ञात नहीं है,

लेकिन वे शब्द प्रचलन में हैं, देशज शब्द कहलाते हैं। देशज शब्दों को देशी शब्द भी कहते हैं।

हिन्दी की दलित कहानियों में परिवेश की प्रस्तुति हेतु क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग बहुतायत किया गया है। भाषा पात्रों के सामाजिक संदर्भ से पूर्ण है। जैसे - ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'अम्मा' कहानी से "अम्मा जी, अनजान ना बणो। जिब घर में गड्डी की गड्डी लोट (नोट) आवे है तो पड़ोसियों को भी पता हो जावे... फेर तम तो माँ हो...घर की मालकिन हमने तो सुणा है जेठजी सारे पैसे थारे ही हाथ में लाके धरे। इब तो वही कहावत हो गई दुनिया को लुट्टो भी और भले भी बणे रहो"।[48]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के 'यह अंत नहीं' कहानी से - "मंगलू ने गहरी सोच से बाहर आते हुए कहा, 'बिरमा की माँ...इब एक मिलट के लियो बी उसे अपणी आँखों से दूर ना करियो...टेम बूरा आ गिया है...किसी तरियो इसके हाथ पीले हो जो तो कुछ चैन मिलेगा'। ...उसकी आवाज़ किसी अंधेरी गुफा से छन-छनकर आ रही थी"।[49] यहां मंगलू और बिरमा की मां क्षेत्रीय भाषा में अपने विचार प्रकट कर रही है। चयनित कहानियों में प्रयुक्त देशज शब्द - बक-बक, खिड़की, पानी, लात, माथा, गड़बड़, बड़बड़, सर-सर, धड़ाम, खर्राटे, कपार, कांय-कांय, धक्का, टक्कर, जूता, उटपटांग, चहकना, गाड़ी, थप्पड़, मुक्का, घूसा, झुग्गी, खुसर-फुसर, भिड़ना।

5.4.4 अंग्रेज़ी

हमारे देश पर कई राजसी शक्तियों का प्रभुत्व रहा है। इन शाही शक्तियों की अपनी भाषाएँ थीं। ये भाषाएँ हमारे देश की भाषा में घुल-मिल गई हैं। जिसका प्रयोग हम हमेशा अपने जीवन में करते हैं। हिंदी भाषा ने कई क्षेत्रीय और विदेशी भाषाओं के शब्दों को अपनाया है। तत्सम, अर्ध-तत्सम, देशी और विदेशी शब्दों के योगदान से हिंदी शब्दावली और भी समृद्ध हो गई है। हिंदी में आमतौर पर इस्तेमाल होने वाले लगभग तीन हजार अंग्रेजी

शब्द हैं। यदि इसमें तकनीकी शब्द शामिल कर दिए जाएं तो यह संख्या दोगुनी से भी अधिक हो जाएगी। कहानियों में अंग्रेज़ी शब्द की उपस्थिति भाषा के और भी रोचक बना देती है, जैसे–सावरियों के नाम–ट्रेन, कार, ट्रक आदि।

शिक्षा संबंधी शब्द - नर्सरी स्कूल, कॉलिज, मास्टर, लेक्चर आदि।

शासन संबंधी शब्द - अपील, कोर्, जज, जेल, वारण्ट आदि।

पोशाक संबंधी अंग्रेज़ी शब्द - पैंट, कोर्ट, सूट, ओवर कोट, टीशर्ट आदि।

खेल संबंधी शब्द - टीम, हाकी, ब्रिज, बास्केट बाल, मैच आदि।

इस प्रकार आज के युग में अंग्रेजी शिक्षा एवं शिक्षण का प्रभाव हो गया है, अतः कहानियों में समय की स्थिति एवं मांग के अनुसार अनेक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया जाता है। हिंदी दलित कहानियों में हिंदी शब्दों के साथ-साथ कहीं-कहीं अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। कुछ ऐसी कहानियाँ, जिनमें कुछ अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है -

1. ट्रांजिस्टर, हैण्डपम्प, ओमप्रकाश वाल्मीकि - खानाबदोश
2. अबार्सन, ट्राली, रोपवे, रिजर्वेशन, सोशल वर्क, स्कूल बैग , सुशीला टारभौरे, सम्भव असम्भव)
3. फेमली, पिलानिंग, डिलेवरी, सर्टिफिकेट, सुशीला टारभौरे - छौआ माँ
4. पुलिस अफसर, न्यूज, डेपुटेशन, कम्पार्टमेण्ड, ट्रस्ट, ऐशट्रे, फ्लैट, प्रेम कपीड़िया - हरिजन

हिंदी की कुछ दलित कहानियों में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि तत्सम शब्दों की अपेक्षा इनका प्रयोग अधिक हुआ है। इससे यह ज़ाहिर है कि भारतीय जीवन परिवेश में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग बढ़ा है।

5.4.5 अरबी - फारसी

कहानियों में अंग्रेजी शब्दों के साथ-साथ अरबी-फारसी शब्दों का भी उपयोग किया गया है। कुछ विद्वान मानते हैं कि हिंदी में अरबी शब्द सीधे अरबी से नहीं बल्कि अधिकतर फ़ारसी भाषा के माध्यम से आए हैं, इसलिए दोनों का प्रयोग एक साथ किया जाता है। मुग़ल काल में फ़ारसी को दरबारी भाषा भी कहा जाता था। इस कारण उनके प्रत्यक्ष एवं दीर्घकालिक सम्पर्क ने हिन्दी को अनेक शब्द भी दिये।

अरबी-फारसी शब्दों के कुछ उदाहरण -

1. पोशाक संबंधी - जुराब, साफा, सलवार आदि।
2. धर्म संबंधी - रोजा, दीन, खुदा आदि।
3. स्वस्थ संबंधी - हकीम, नब्ज, लकवा, हैजा, दवा, मरीज, आदि।
4. स्थान संबंधी - देहात, शहर, जिला, कस्बा आदि।
5. मिठाई नमकीन संबंधी - बरफी, जलेबी, कुल्फी, समोसा आदि अरबी-फारसी के शब्द है, जिनका हम अपने जीवन में अधिक प्रयोग करते है।

इस प्रकार कहानी में अरबी-फारसी शब्दों की उपस्थिति भी कहानी की भाषा को प्रभावी बनाने में पूर्ण रूप से सक्षम है। चयनित कहानियों में प्रयुक्त अरबी शब्द - हाल, कानून, कुर्सी, कीमत, गरीब, तारीख, जुर्माना, जिला, शादी, हिसाब, इलाज, इज्जत, दुनिया, नशा, बहस, हिम्मत, इस्तीफा, आज़ाद, मतलब, मदद, मालूम, तहसील, मुकाम आदि।

चयनित कहानियों में प्रयुक्त फारसी शब्द - दुकान, तनख्वाह, चश्मा, बीमार, मजदूर, मजबूर, दीवार, दरवाजा, अखबार, आसमान, खराब, आराम, खर्च, जेब, खून, जमीन, दवा, तबाह, जगह, शराब, जान, अफसोस, लेकिन आदि।

निष्कर्ष

दलित कहानियों में भाषा, शैली और शिल्प के सरल प्रयोग से कहानियों को रुचिकर बनाया गया है। भाषा की परिपक्वता एवं शिल्प कौशल, शैली की विविधता आदि दलित कहानियों में उपलब्ध हैं। अधिकांश आधुनिक दलित कहानियों में अंग्रेजी शब्द का प्रभुत्व दिखाई देता है। समसामयिक परिप्रेक्ष्य में दलित महिलाएँ शिक्षित हैं, इसलिए उनकी भाषा में स्पष्टता और शुद्धता देखी जा सकती है। इस प्रकार भाषा हो या शैली, आधुनिक काल की दलित कहानी ने एक नई ऊंचाई प्राप्त की है। दलित कहानियों में सरल, सामान्य और अत्यन्त प्रचलित शब्दों का प्रयोग हुआ है।

संदर्भग्रंथ सूची

1. आदर्श सक्सेना - हिंदी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प - --- विधि, पृ. ४८
2. द्वारका प्रसाद शर्मा तारिणीश झा, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभम्, पृ. 1111
3. डॉ. रामचंद्र वर्मा, संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर, पृ.945
4. मानक हिंदी कोश, (पंचम भाग), पृ.173
5. डॉ. विद्यान्वास मिश्र, अज्ञेय, पृ. 138
6. डॉ. प्रेम भटनागर, हिंदी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य, पृ.11
7. डॉ. अशोक वाजपेयी, आधुनिक हिंदी काव्य में शिल्प, पृ. 19
8. डॉ. मोहन अवस्थी, आधुनिक हिंदी काव्य शिल्प, पृ. 11
9. डॉ. पांडुरंग पाटील २. डॉ. दयाकृष्ण विजय - - देवेश ठाकुर और उनका उपन्यास साहित्य - पृ. १९२ मधुमती, अंक ११,३० नवंबर, १९९१, पृ. ८
10. बुद्ध और उनका धम्म; डॉ. अम्बेडकर
11. आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श; नामदेव ढसाल और जे.वी. पवार; पृ-226
12. सूरज बड़त्या, गुफाएँ, पृ.205, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री कैंन्द्रित कहानियाँ,वाणी प्रकाशन
13. सूरज बड़त्या, गुफाएँ, पृ.207, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री कैंन्द्रित कहानियाँ,वाणी प्रकाशन
14. टेकचंद, ए.टा.एम, पृ.237, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री कैंन्द्रित कहानियाँ,वाणी प्रकाशन
15. मोहनदास नैमिशराय, यात्रा, पृ.41, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन
16. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अम्मा, पृ.113, सलाम कहानी संग्रह, राधाकृष्ण प्रकाशन
17. रजत रानी मीनू, सरोगेट मदर, पृ.261, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

18.डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृ.21

19.डॉ. कुसुम मेघवाल हिंदी उफन्यास और दलित नारी, पृ. 52

20.ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम, पृ.67

21.ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण, 2000, पृ.17

22.सुशीला टाकभौरे, कड़वा सच, पृ.58, रजत रानी मीनू, प्रथम संस्करण 2023, वाणी प्रकाशन

23.हरिराम मीणा, अमली, पृ. 95, रजत रानी मीनू, प्रथम संस्करण 2023, वाणी प्रकाशन

24.मोहनदास नैमिशराय, अपना गाँव, पृ.12

25.कैलाश वानखेड़े, महू, पृ.109, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

26.कैलाश वानखेड़े, महू, पृ.118, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

27.संपादक डॉ शिवनारायण, दलित जीवन की कहानियाँ, साहित्य भारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2014, पृ.18

28.सूरजपाल चौहान, चोट, पृ.38, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

29.मोहनदास नैमिशराय, यात्रा, पृ.42, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

30.हरिराम मीणा, अमली, पृ.93, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

31.हरिराम मीणा, अमली, पृ.94, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

32.सुशीला टाकभौरे, कड़वा सच, पृ.55, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

33.सुशीला टाकभौरे, त्रिशूल, पृ.185, कथारंग सुशीला टाकभौरे की सम्पूर्ण कहानियाँ, प्रथम संस्करम 2022, प्रलेक प्रकाशन

34.दीपा, जीत, पृ.289. रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

35.रजत रानी मीनू, सुनीता, पृ. 29, हम कौन है(कहनी संग्रह), प्रथम संस्करण 2012, वाणी प्रकाशन

36.सुशीला टाकभौरे, मेरा समाज, पृ.128, कथारंगःसंपूर्ण कहानियाँ (कहनी संग्रह), प्रलेक प्रकाशन

37. सुशीला टाकभौरे, मेरा समाज, पृ.131, कथारंगःसंपूर्ण कहानियाँ (कहनी संग्रह), प्रलेक प्रकाशन

38.सुशीला टाकभौरे, झरोखे, पृ.119, कथारंगःसंपूर्ण कहानियाँ (कहनी संग्रह), प्रलेक प्रकाशन

39.सुशीला टाकभौरे, झरोखे, पृ.120, कथारंगःसंपूर्ण कहानियाँ (कहनी संग्रह), प्रलेक प्रकाशन

40.अजय नावरिया, इज्जत, पृ.157. रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

41.डॉ. निर्मल सिंहल, नई कहानी और अमरकान्त, पृ.66

42.नामवर सिंह, कहानी नई कहानी, पृ.79

43.डॉ. पुष्पलाल सिंह, समकालीन कहानीःयुगबोध का संदर्भ, पृ.306

44.टाकभौरे, सुशीला, त्रिशूल, पृष्ठ-190, कथारंग संपूर्ण कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2022, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

45.वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जंगल की रानी, पृष्ठ-98, घुसपैठिए, प्रथम संस्करण-2016, राधाकृष्ण प्रकाशन

46.घुसपैठिए, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2003, भूमिका से

47.डॉ. सुरेश बाबर, भीष्म साहनी के साहित्य का अनुशीलन, पृ.185

48.ओमप्रकाश वाल्मीकि, अम्मा, पृ.119, सलाम कहानी संग्रह, राधाकृष्ण प्रकाशन

49.वाल्मीकि, ओमप्रकाश, यह अंत नहीं, पृ.23, घुसपैठिए, राधाकृष्ण प्रकाशन